कहानी

रूपसी मन्ना

महाश्वेता देवी

पहले वह कहा करती थी— मेरा नाम उपासी मन्ना है।

अब कहती— मेरा नाम रूपसी मन्ना है।

पहले, चुन्नट डालकर साड़ी पहनने में मुश्किल होती थी।

अब कोई असुविधा नहीं होती।

पहले, वह भीगे बाल सुखाकर, जतन से जूड़ा बांधने में काफी देर लगाती थी।

अब कसकर एक चोटी बांध लेती है, बस।

पहले उसका रंग खासा मैला था।

अब वह खुद समझ गयी है कि शहर कलकत्ता का पानी, तंग-बंद कमरे में रहते हुए, उसका रंग काफी उजला गया है।

जब आयी थी, भांय-भांय रोती रहती थी।

अब बिल्कुल नहीं रोती।

पहले, बातचीत में अक्खड़पन था।

अब गंवई गंध धुल-पुंछ गयी है।

पहले, अपने मायके-ससुराल, पति-सास के बारे में, जब बतियाने लगती, तो धाराप्रवाह बोलती ही चली जाती थी।

अब कम बात करती है। चाल-ढाल, बोल-चाल भी काफी बदल गयी है। इस हद तक बदल गयी है कि उसका भाई भी उसकी इज़्ज़त करता है।

"तू न, हेवी बदल गयी है, री दिदिया।"

रूपसी हंस पड़ी, "सोलह बरस की उम्र में यहां दाखिल हुई, अब इकतीस बरस हो गए। बदलूंगी नहीं?"

हां, सोलह बरस की उम्र में, उसने उस जेल में कदम रखा था।

वैसे, इस तरह की आजीवन सज़ा होनी तो नहीं चाहिए। सोलह साल यानी नाबालिग उम्र। लेकिन रूपसी मन्ना आख़िर कर भी क्या सकती थी, अगर पुलिस उसकी उम्र, उन्नीस साल दर्ज करे?

उसका बापू रो-रोकर अरज करता रहा, "किसका दोष, किसके सिर मढ़ दिया गया। मेरी बेटी भला ऐसा काम, क्या कर सकती है?"

सरकारी वकील भी निरुपाय था। बिल्कुल लाचार। "पुलिस ने केस दिया है। मैं तो सिर्फ़ वकील खड़ा किया गया हूं।"

पुलिस ने तो साफ़-साफ़ कहा, "रूपसी ने ही अपनी विधवा जेठानी, सती रानी का खून करने की धमकी दी। उसे काट डालेगी... बदचलन औरत, वेश्या.... वगैरह-वगैरह की धमकी देते हुए, नील पूजा के पहले, मुहल्ले भर की नींद में खलल डालती हुई, चीखती-चिल्लाती रही थी।"

मुहल्ले के शरीफ़ बाशिन्दों ने वह चीख-चिल्लाहट सुनी थी।

रूपसी मन्ना के शौहर, जतन मन्ना, सास, नलिनी मन्ना, अड़ोसी-पड़ोसी सभी लोगों ने सती रानी की बुलन्द आवाज़ सुनी थी।

"तेरा भतार मेरे पास आता ही काहे है? देवर पर तो उमिर की गर्मी चढ़ी है। मेरे पास आते-जाते, कितनी ही बार तो बरज दिया कि अब ईहां मत आया करो। मत आया करो ईहां। कभी मत आना। बहुरिया ले आये, अब रहो उसके पास। अब, तेरा भतार न सुने, तो हम का करें?"

सास रो-रोकर, वकील के आगे बयान करती रही कि उसे कुछ नहीं मालूम। "उस सांझ, छोटकी रसोई में लगी थी, चिंगड़ी-मछरी की भुजिया और पोस्ता-दाल रांधा था। सबने खाया। लेकिन, बड़की मुरमुरे लेकर, अपनी कोठरिया में जा समायी। कही गयी, ऊ लइया चबाकर, पानी पी लेगी, अरे, बिल्कुल गदरायी हुई, चुस्त अउरत है, वकील बाबू। कउन कहेगा कि ऊ दू-दू बिटिया ब्याह कर, सास बन चुकी है? सो, सुबह-सबेरे जतन ही तो चिल्लाया। खूब-खूब चिल्लाया, बाबू, मोर तो छाती धड़-धड़ धड़धड़ाने लगी। डर के मारे, हमार जान ही निकल गयी। कइसे जोर-जोर से चिल्लाय रहा था जतन। चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा था। बीच का दरवज्जा खुला पड़ा है, अउर बड़की की गर्दन उतार कर, उपासी कोठरिया में सोयी पड़ी है। उसके बाद तो.."

उसकी सास ने बड़ी-बड़ी बतकही की, मगर उसकी ज़ुबान से एक बार भी नहीं फूटा कि ऐसा काम रूपसी नहीं कर सकती। वो तो और ही राग अलापती रही।

"अब तो जो होना था, हुई गवा। अब इसको तो छोड़ दीजिए, वकील बाबू जो मर गयी, वह तो अब नहीं लौटेगी न? गिरस्ती सत्तानास हुई जायेगी। ओका छोड़ दें, साहब।"

लेकिन उसने एक बार भी नहीं कहा कि रूपसी ऐसा काम करे, यह नामुमकिन है।

जतन तो, खैर, सुबह से ही फूट-फूटकर रोये जा रहा था।

वह छाती पीट-पीटकर पूछता रहा, "अइस काम तूने काहे किया? बरदास नहीं हो रहा था, तो मोका कहा होता। तोका लै के हम कहीं और चले जाते। इतना बड़ा कांड कर बैठी तू? अब तोरा का करूं मैं?"

उस जमाने में रूपसी बिल्कुल चीनी चुतुल जैसी। पानी पड़ते ही गल जाये। मानो मोम हो, ताप लगते ही पिघल जाये। उस जमाने में रूपसी की नींद भी बिल्कुल कुभकर्ण जैसी।

भयंकर चीख-पुकार, शोरगुल सुनकर, उसकी नींद टूटी। वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसके बाद तो सारा कुछ दुःस्वप्न। वह चौकी पर सोयी हुई। उसके और उसकी जेठानी की कोठरी के बीच की सांकल खुली हुई थी। फूस-पत्ते काटने की धारदार कटार, उसी के हाथों के करीब पड़ी हुई। उसकी साड़ी पर खून-ही-खून।

रूपसी रोयी नहीं। कहते हैं, वह एकदम से चीख उठी थी, "इत्ता खून कइसे लागा है, जी, मेरी धोती पर? कहां से लगा?"

"ई काम तून काहे किया, बोउ रे?" जतन रोता गाता रहा।

उसका सवाल सुनकर, रूपसी ने अचकचाकर, पूछा, "काउन-सा काम?" दरवाज़े पर भीड़ ही भीड़। असंख्य चेहरे, मगर स्तब्ध, ख़ामोश।

रूपसी चौकी पर से नीचे उतर आयी। वह एक-एक कदम नापती हुई आगे बढ़ी। उसके बाद, सब कुछ, मानो खौफ़नाक सपना... मानो किसी मेले में देखे गये, किसी भयंकर जाई का आतंक! जेठानी ज़मीन पर चित्त पड़ी थी, लेकिन उसका सिर अजीब ढंग से ढलका हुआ! खून! चारों तरफ खून ही खून। रूपसी बेहोश हो गयी।

बेहोश हो जाने के बावजूद, थोड़ी देर बाद, उसे होश में तो आना ही था।

जतन के ही रिश्ते की फुफेरी बहन, माला की आवाज़, उसके कानों में पड़ी, "जतू दा की चीख सुनकर ही तो, हम सब आ पहुंचे, सुना कि छोटी भौजी, बड़ी भौजी का कत्ल करके, बेखबर सो रही है। जतू दा ने क्या अपनी आंखों से देखा? अरे, लोग चाहे जो कहें, इस घर का किस्सा किसी से छिपा नहीं है।"

रूपसी को ये भी होश नहीं था कि उसके सिर पर आंचल नदारद है। बदन पर साड़ी भी बिल्कुल ढीली-ढीली, अस्त-व्यस्त। वह एकटक जतन को घूरे जा रही थी।

माला के बापू ने कहा, "क्या, भइया, जतू, छः को नौ, नौ को छः बना रहे हो तुम? मैं पूछता हूं, तेरा और बड़ी बहू का लटर-पटर कौन नहीं जानता था? ब्याह से पहले, तूने उसके लिए कनफूल नहीं गढ़ा दिया था? उसे पहनकर, बड़ी बहू इतराती नहीं फिरी थी?"

जतन की मां एकदम से बिफर पड़ी, "हाय-हाय नाते-रिश्तेदार कैसे दुसमन होते हैं? सुनौ इनकी बात! लटपट जब था, तब था। विवाह से पहिले ई सब आम बात... बियाह के बाद से तो मेरा जतू, बहू को अपनी आंखिन में बसाये रखता था।"

"हां-हां, पता है। सब पता है। मेरे पिछवाड़े, कला-गाछ की झुरमुट तले, रोज ही दोनों में खुसफुस बात होती रहती थी। बड़ी बहू का चरित्तर ऐसा था, तभी तो दोनों बेटियों का ब्याह, मामा के घर से हुआ।"

"यह तुम क्या कर रही हो, बुआ?"

"कुछ नहीं, बेटा, हां, उपासी ने जेठानी को टुकड़े-टुकड़े काट भी डाले और निश्चित, सोती भी रही, यह तो बड़े ताज्जुब की बात है न, जतू? उसी वक्त तुम कहां थे, भइया?"

ऐसे में माला के बापू गरज उठे, "जाओ, घर जाओ, बकू की मां। माला, ले जा, अपनी माय को घर ले जा। बात से बात बढ़ जाती है। बातों से ही लंका-कांड मच जाता है। चलो, घर जाओ—"

तभी किसी ने कहा, "अरे, छोटी बहू के मायके वालों को भी खबर दे दो—"

सास ने रोते-रोते कहा, "वे लोग अपने घर हों, तब न? सब तो तीरथ करने गये हैं, मंडलेश्वर! जाने से पहले, बेटी को देखने आए थे। कितना समझा-बुझाकर गये थे उसे। हाय-हाय, मेरी छाती में क्या जो हुई रहा है...।"

"तुम्हीं तो हो बर्बादी की जड़? जतू दा जवानी से ही, बड़ी बहू की मुहब्बत में... उनका ब्याह करके, तुमने किसी भलेमानस की बेटी की जिन्दगी क्यों तबाह की?" माला ने झिड़क दिया।

ये तमाम बातें तो बहुत बाद की थीं। इससे पहले, उसे वक्त ही कहां मिला? वह तो, काफी दूर चले आने... और काफी दिनों तक सोचते रहने के बाद, अहिस्ते-आहिस्ते उसे सारा किस्सा समझ में आया। जैसे-जैसे उसे सारी कहानी समझ में आयी, उतनी ही वह बदलती गयी।

हां, बापू-मां, दीदी-जीजा, दीदी की बड़ी ननद, सभी, उन दिनों रूपसी के छोटे भाई की मनौती की पूजा देने, मंडलेश्वर गए हुए थे। जाने से पहले, उसके बापू चिउड़ा, केला, हंडिया भर रसगुल्ला लेकर, बेटी से मिलने भी आये।

बड़ी बहू ने कुटिल हंसी हंसते हुए व्यंग्य भी किया, "मंडलेश्वर जाने-रहने और पूजा देने में, कुल तीन दिन ही तो लगते हैं। मंडलेश्वर आख़िर है ही कितनी दूर, जो बेटी से मिलने चले आये? सब तेरी तकदीर है, री छोरी! मां-बाप ने तो कभी तेरी सुधि ही नहीं ली, कभी पलटकर देखने भी नहीं आये।"

सास ने एकदम से झिड़क दिया, "तुम तो कपड़े-लत्ते धोने जा रही थी न? सो, घाट का रास्ता लो न, बहू।"

बाद में रूपसी को ख्याल आया, जेठानी को वाकई अपना बोरिया-बिस्तर, चटाई धोने-सुखाने की अक्सर झख चढ़ी रहती थी। बिस्तर के साथ-साथ साड़ी-साया-ब्लाउज़, सारा कुछ, अक्सर ही धोती-सुखाती रहती थी। सब कुछ उजला-धुला, साफ़ नज़र आता था।

एक ही दालान में तीन कमरे। बड़ा कमरा बड़ी बहू के पास, बीच का कमरा छोटी बहू के पास और छोटा कमरा, सास के पास! हर कमरे में तख्त, खूंटी, दरवाज़े की एक तरफ, उठी हुई दीवार!

हां, ये सम्पन्न लोग थे। काफी सारी ज़मीन, पोखर, नारियल के चार-पांच पेड़, यह सब उसके हिस्से में आया था। बड़ी बहू के पास, निजी दो कट्ठा ज़मीन भी थी, जिस पर लौकी, पोई, अरबी, मूली, मिर्च की खेती होती थी। कुछ बेच दिया जाता, कुछ खाने-पीने में खप जाता।

रूपसी के करीब बैठे-बैठे, उसके बापू, उसके सिर पर हाथ फेरते हुए समझाते रहे, "मैंने सब देख-सुनकर, तुझे यहां ब्याहा था, बिटिया! जीवन कमबख़्त ने सारी बातें हमें नहीं बतायी थीं। बाद में, सुनने में आया... वो जो उसका बछड़ा, हमारे तालाब में डूब गया था, उसने उसी का बदला चुकाया था। ख़ैर जाने दो। मंडलेश्वर बड़े जाग्रत देवता हैं। तेरे लिए भी पूजा दे आऊंगा, बिटिया! तुझे वहां की ताबीज भी ला दूंगा। अभी दुःख उठा रही है, मगर बाद में सुख-ही-सुख होगा।"

रूपसी ने भी सिर हिलाकर कहा, "हां, बापू, तुम ठीक कहते हो। सुख भी जरूर आयेगा।"

"हां, देख लेना, जतन तेरे पीछे पागल बना घूमेगा।"

"हां, बापू!"

सास भी समधी के लिए आ खड़ी हुई। उन्हें पान-जर्दा पेश करते हुए, उसकी तारीफ भी की थी, "बड़ी लक्ष्मी-बेटी है तुम्हारी, समधी! उसकी फिकिर बिल्कुल ना करो।"

"बड़े लाड़ से पाला है, समधिन!"

सास ने भी कोई साज़िश रचने की मुद्रा में, अपनी आवाज़, बेहद धीमी करते हुए, फुसफुसाकर कहा, "अब कहने को तो दुस्समन नाते-रिश्तेदार तरह-तरह की बातें बनाते हैं। वह सब झूठ के अलावा, और कुछ नहीं। तीरथ के बाद, आप सीधे अपने घर जायेंगे, मुझे मालूम है। बाद में ही सही, यहां भी आइएगा ज़रूर। यहां का गाजन-मेला देख जायें।"

"बैसाख के महीने में, उसे लेने आऊंगा, समधिन! कुछ दिनों, उसे मेरे पास भी रहने दें। ब्याह के बाद से वह गयी भी नहीं..."

"देखो, जतू अगर उसे छोड़े, तब न! मेरा भी यही हाल है कि बहुरिया के हाथ के पके-पकाये खाने के अलावा एक कौर भी नहीं खाया जाता। अरे, पूरे मुहल्ले भर में, उसका जितना नाम-यश है। हर कोई कहता है, सचमुच बहू जैसी बहू लायी हो तुम।" अचानक उन्होंने आवाज़ और धीमी करते हुए कहा कि उन्हें बड़ी बहू से खासा खौफ़ था। अपने हट्टे-कट्टे, जवान-जहान, रूखे-निर्मम छोटे बेटे से भी डर लगता था।

रूपसी के बापू मिठाई खाकर, पानी पीकर चले गये।

रूपसी के लिए, वह ताबीज़ पहनने का मौका नहीं आया। उससे पहले ही सारा कुछ तहस-नहस हो गया। उस दिन क्या-क्या हुआ था, अब वह सब याद करते हुए, मानो अंधेरा छा जाता है। यात्रा-उत्सव के मैदान में जेनरेटर तक बन्द हो गया था। कहीं, कोई चिराग नहीं जला। चारों तरफ घोर काला अंधेरा...

अगर वह जेल न जाती और वहीं वेलफेयर अफ़सर दीदी से बातचीत न हुई होती, रूपसी को इतना सब समझ में भी नहीं आता।

बाद में, धीरे-धीरे उसकी समझ आया कि आसपास कोई दूसरी औरत नहीं मिली उन्हें। जतन से बड़ी बहू की इश्कबाज़ी के बारे में सभी जानते थे। इस बारे में काफी बदनामी... काफी कलह भी हो चुका था।

...दोनों बेटियों को मायके में सहेजकर, बड़ी बहू पूरे दर्प के साथ वापस लौट आयी।

...बेवा भौजी ने लौटकर, सास को सुनाकर, तीर चलाया, "तुम्हारा बेटा ही, मेरे हाथ-पैर जोड़कर मुझे वापस ले आया, समझीं?"

रूपसी की बातें सुनकर, चन्नमा ने राय दी, "देवर-भाभी में इस तरह का रिश्ता हो भी सकता है, बिटिया। उधर लोक दिखावे के लिए, ऐसे मरद, ब्याह भी करते हैं। यह कोई नई बात है क्या?"

हां, मुमकिन है, यह नई बात न हो। लेकिन, रूपसी को इसका अहसास ही नहीं हुआ।

जेठानी के साथ शौहर की लिपटा-झपटी, खींचातान, रात को उसके बिस्तर पर बैठे-बैठे, उन दोनों को रसीले रसरंग में डूबे देख-देखकर, उसके मन को खटका ज़रूर लगा था।

हादसे के दो दिन पहले, उसने जतन से कहा भी था, "चैत-बैसाख मैं नहीं जानती, बस, मुझे कातलाहाटी छोड़ आओ।"

"क्यों? मैं क्या तेरे पास नहीं रहता?"

"कब आते हो, मुझे क्या खबर? दिन भर हड्डियां तोड़ती हूं, बिस्तर पर पड़ते ही, नींद धर दबोचती है।"

जतन ने हड्डी थामकर कहा, "अरी, भैंस की तरह पड़ी-पड़ी सोती रहती है, तभी तो मैं उठकर, कभी-कभार पान-वान खाने चला जाता हूं।"

"दरवाज़े पर सांकल क्यों नहीं लगाते?"

"लगवा लूंगा! लगवा लूंगा!"

जतन कभी हांक-डाक नहीं लगता था। रूखी या ऊंची आवाज़ में भी बात नहीं करता था। वह जब चाहता, रूपसी को अपनी मीठी-नरम बातों से पिघला लेता। बाद में, रूपसी को अहसास हुआ कि जतन महज़ नाटक करता था। नाटकबाज़ी उसके लिए आसान थी, क्योंकि वह यात्रा-नौटंकी वगैरह में पार्ट जो लिया करता था। पौराणिक, सामाजिक, जाने कितनी-कितनी तरह की नौटंकियां।

हादसे के दो दिन पहले, जाने किसी वजह से, देवर-भाभी में जमकर झगड़ा हुआ था।

बाद में, जतन ने रूपसी से कहा, "सरबनासी औरत है! कंकाला! उम्र तो, समझो, बत्तीस की हो चुकी। मुझसे बड़ी है। बेटियों को तो मामा लोगों ने ब्याह दिया। बेटियों की उम्र भी अठारह और सोलह हो चुकी है। कितना समझाया, अब तो शांत हो जा, चंडी।"

"सोहल यानी मेरी उम्र की?"

"बे-शक!"

"छिः छिः छिः!"

"हां, छिः छिः की तो बात ही है। मानता हूं कि ताली एक हाथ से नहीं बजती। लेकिन, अब तुम आ गयी हो। अब तो संभलकर चलना चाहिए। लेकिन, उसकी बुद्धि ही नहीं खुलती।"

जतन क्या सच बोल रहा था?

मुमकिन है, देवर-भाभी में कोई बात हुई हो। तभी तो उसकी जेठानी, सुबह से ही फन काढ़े, फुत्कारती फिर रही थी।

"अरी, ओ, तू जो सोच रही है न, ऊ नाहीं होवे का। ऊ बन्दे को, हमने अपने पांव में जंजीर बनाकर डाल रखी है। उसका दिल, तुझ पर कभी न आयेगा..."

"छिः छिः तुम्हें लाज नहीं आती?"

"लाज की का बात है? लाज आये मेरे दुस्मन को। इतनी बड़ी हिम्मत? अब मुझे, ऊ मरद कहता है, संभलकर रहना हो रहो, वर्ना यहां से दफा हो।"

"देखो, उमर में मैं तुम्हारी बेटी बराबर हूं, इसका भी होश है तुम्हें?"

"हमका दोस देने से फायदा? ऊ मरद तो मेर तू-तू कुत्ता है। अगर सच्ची दम है तो उसे बांधकर रख अपने पास! वैसे, ऊ मनुख तोरे काबू में नाय आने वाला! तू हमसे नाय जीत सकेगी, मुंह की खायेगी, मुंह की! अरे भला बालू की सांकल लगाने से, कहीं बाढ़ रुकत है?"

बालू की सांकल! शब्द का दुहरा अर्थ था। जतन उसी दिन सांकल खरीद लाया था और अब मिस्त्री बुलाने निकला था। बस,

इसी बात से, सैकड़ों बात निकल आयी और बात बढ़ गयी। उस ज़माने में रूपसी की भी छाती में दमखम था, मन में साहस भी! हज़ार पाप करने के बाद, पति सुपथ लौटना चाहता था, वह औरत ही ऐसा नहीं होने दे रही थी।

...उसी दमखम से रूपसी ने बुलंद आवाज़ में जेठानी को शाप दिया था। कंगली औरत! बदचलन कहीं की! निर्लज्ज! दो-दो बेटियों के कच्चे-बच्चे हो गये। नाती-नातियों की नानी बन गयी, मगर नायलॉन पहने, अंग-अंग झलकाती घूमती है! रंडी जैसी चाल-ढाल!

देवरानी के मुंह पर खरी-खोटी सुनाते हुए, जेठानी को जैसे कोई नया ख़्याल सूझ गया।

वह गला फाड़-फाड़ कर दुबारा चिल्ला उठी, "रूपसी सात-सात थप्पड़ खाकर भी उफ़ तक नाहीं करती। देख ल्यो। आंखिन के सामने ही, फटे बांस जैसी चिंचियाय रही है..." हाथ लगा मौका, उसने भी जाने नहीं दिया, "तेरा भतार आता काहे है भला, इतने बरस से? हम ठहरी अबला नारी...कितनी बार तो बरज दिया..."

इस महा-घमासान की चीख-चिल्लाहट के बारे में सभी लोगों ने बयान दिया।

सास ने सूखी आवाज़ में कहा, "किस बात पर इतना घमासान जूतम-पैजार हुआ था, हमका नहीं मालूम, बाबू।"

उसके बाद, वह सर्वनाशी सुबह! थाना-पुलिस! भीड़! वैनरिक्शा पर, पॉलिथिन में लिपटी जेठानी! दूसरे वैनरिक्शे पर रूपसी, जतन, सास और पुलिस।

पुलिस ने कहा, "पूछताछ के लिए ले जा रहे हैं, और कोई बात नहीं।"

काफी देर बाद, रूपसी ने मन-ही-मन तय किया, वह जतन से ज़रूर पूछेगी, "छोटकी बहू, बड़की बहू की बोटी-बोटी करके, मजे से सो रही है—" बार-बार, चिल्ला- चिल्लाकर यह क्यों रट रहे थे? मैंने तो कत्ल किया नहीं।

लेकिन जतन मिला ही नहीं। पुलिस के सामने, उसे जो-जो बयान दिया था, उसमें उसी का नुकसान हुआ है, उस वक्त तो उसे इतनी भी समझ नहीं थी।

हां, उसकी जेठानी और पति में गलत संबंध था। हां, उसने अड़ोस-पड़ोस के लोगों से भी सुना है, खुद अपनी आंखों से भी देखा। जेठानी ने भी यही बात डंके की चोट पर ज़ाहिर की थी।

हां, उसने भी उसे खरी-खोटी सुनायी।

नहीं, सांकल उसने नहीं खोली।

जेठानी के गहने-जेवर? उसने कभी नहीं देखा।

हां, सारी बातें उसका पति जानता था।

इधर रूपसी का बापू, बेचारा सिर पीटते-पीटते बेहाल था, "मेरी बेटी की उमिर उन्नीस नहीं है, बाबू, मेरी बेटी तो बड़ी शांत है। वह ई काम नहीं कर सकती, वकील बाबू। अगर मुझे पता होता कि दामाद बदचलन है तो क्या मैं...? बियाह में हमने तीन तोले चांदी, एक तोला सोना दिया था, बाबू।"

रूपसी के जीजा ने सूखी-सूखी आवाज़ में कहा, "कोई फायदा नहीं होगा, सुन रहे हैं? जतन ने बिल्कुल जतन से जाल बिछाया है। वहां उसने भर-भर मुट्ठी मोटी रकम दिखलायी है?"

अड़ोस-पड़ोस?

भला ऐसे मामले में, कोई गवाही देता है?

"हे भगवान्! यह कैसा इंसाफ़ है? लगता है वह बड़ी बहू को अपने कन्धे से उतारना चाहता था, साथ में उपासी को भी। थोड़े दिनों में सारा मामला, बेहद संकरे दायरे में हलचल मचाए रहा। सरकार की तरफ से रूपसी को भी वकील दिया गया, क्योंकि उसके बापू के पास, इतनी दौलत नहीं थी कि बेटी के लिए वह रोज़-रोज़ वकील खड़ा कर सके। मामले-मुकदमे तो अक्सर साल-दो-साल तक जारी रहते हैं। शुरू-शुरू में रूपसी बेभाव बोलती रहती थी, मानो उसे विश्वास ही नहीं था कि उसके नाम कत्ल का मामला साबित भी हो सकता है।"

चन्नना उम्र में उसे काफी बड़ी थी।

उसने पूछा, "साबित क्यों नहीं कर सकता?"

"झूठ भी भला कभी सच हुआ है?"

चन्नना ने उसे समझाया, "थाना-पुलिस, अदालत या सब बिल्कुल अलग ही दुनिया है री, साबित करना ही होगा, यह बात, बहुत पहले ही तय हो जाती है। साबित कर भी देते हैं। यह एक विशाल, अदृश्य पहिया है, जो घूमता रहता है। लगातार घूमता

रहता है। यह पहिया, रूपसी औरतों को कुचल-पीसकर, खत्म कर देता है।"

ऐसा ही होता है। यही होता है। दक्षिण चौबीस परगना के फौज़दारी मामले देखते-देखते, सरकारी वकील के मन में अब कोई आलोड़न नहीं जागता। रूपसी ने अगर खून किया भी हो, तो उसके पीछे कई-कई कारण थे, यह तो साबित नहीं होता।

हाथ में पंहसुल लिए-लिए, रूपसी ने पूछा था, "मैंने इस चीज से मारा? मेरे पति-परमेश्वर ने खुद देखा?"

जतन ने समयानुकूल हाहाकर भरे लहजे में जवाब दिया, "मारने को कहा तो था। उसके बाद, सुबह-सबेरे जंगल-मैदान से निपटकर, जब मैं कमरे में लौटा, तो..."

सास तो, खैर, अदालत में बुलायी ही नहीं गयी।

सन् 1979 साल! असंख्य वधू-हत्या और पतियों-सासों की फौरन गिरफ़्तारी का साल नहीं था। उस ज़माने में वधू-हत्या को लेकर इतना शोरगुल भी नहीं मचाया जाता था। समाज इतना जागरूक नहीं था। रूपसी को कोई सुविधा नसीब नहीं हुई।

दायरा अदालत में ही उसे आजीवन कारावास की सज़ा सुना दी गयी। रूपसी के लिए किसी ने हाई कोर्ट में अपील नहीं की।

चन्ना ने कहा, "कौन करता?" अब मुझे ही देखो न! बेटे को जन्म दिया था। बाईस दिन के बच्चे के मुंह में, अपनी दूध भरी छाती घुसेड़कर सो गयी। बेटे का दम घुट गया। मर गया। और मैं जेल काट रही हूं।"

वह रूपसी को अकसर समझाती थी, "इतना घुट-घुटकर रहने की क्या ज़रूरत है? खूब मेहनत कर, आराम से खा, पैसे जमा कर। रिहा होकर, जब बाहर निकलेगी, तो एक दुकान खोल लेना। सिगरेट-पान बेचना। अरे, एक ही पेट है न, चल ही जाएगा। या दुबारा उस पति-परमेश्वर का घर बसायेगी?"

"कौन पति? यहां आता ही कौन है? पहले बापू आया करते थे, अब भाई आता है।"

"यह भी बड़े ताज्जुब की बात है, री। बाहर निकलकर, खड़े होने के लिए एक जगह भी मौजूद है।"

"मरद अगर उम्र-कैद का सजावार हो, तो अपनी दुनिया में लौट सकता है। औरत..."

"बापू और भाई तो जानते हैं, मैं बेकसूर हूं।"

"और जिसने तुझे फंसाया? देख लेना, वह हंसी-खुशी अपनी गृहस्थी में मगन होगा।"

"तिबारा ब्याह कर लेगा? लड़की मिल जायेगी उसे?"

"मिलेगी क्यों नहीं? उस जैसे मर्दों को लड़की भी मिल जाती है।"

जेल से रिहाई के बाद, बेहद संयत बातचीत। दो हज़ार छः सौ चार रुपयों के कड़क नोटों की मालकिन बनी, रूपसी मन्ना, बाहर सड़क पर निकल आयी।

भाई ने बताया, "अब हम दक्षिण बारासात में आ बसे हैं दीदी।"

"और गांव की जमा-पूंजी?"

"सब बेच-बाचकर.. वहां तो सिर्फ़ बातें! लच्छेदार बातें! बातों की फुलझड़ी! कोई तरक्की भी नहीं हो रही थी—"

"घर बनवा लिया बापू ने?"

"हां, बनवा लिया। जरा, भीतर की तरफ! वहां तक सड़क, अभी नहीं बनी। बन जायेगी। खम्भे वगैरह बैठा दिए गए हैं। बिजली भी आने वाली है.."

"तेरे पास रिक्शे कितने हैं?"

"एक अपना और आठ किराए पर चलते हैं।"

"ब्याह नहीं किया?"

"किया। मेरा ससुर ही तो यहां ले आया—"

"उन लोगों की कोई खबर!"

"कहां से होगी? कौन रखता खबर? हां, जीजा बता रहे थे, मां तो मर गयी। ब्याह किया, मगर बीवी भाग गयी। अब फिर दलाल लगाया है, ब्याह करने के लिए। नाते-रिश्तेदारों ने उसे अलग-थलग जो कर दिया। पोखर-बागान, सब चला गया। उस दिन जीजा से कह रहा था—दो-दो बीवियां न लाई जायें, तो गिरस्ती नहीं चलने की। दोनों औरतें मेहनत करेंगी, आपस में मार-कुटाई करेंगी और उसे खिलायेंगी।"

"खैर, वह कुछ भी बोल सकता है।"

"तू जायेगी वहां?"

"इस जिन्दगी में तो नहीं। वैसे तुम लोगों पर भी बोझ नहीं बनूंगी। आलू-अंडे बेचकर, एक अदद पेट का गुजारा तो हो ही जाएगा।"

"वह सब, बाद में देखा जाएगा। मेरा ससुर कौन है, पता है?

"वही जीवन, जो मेरा रिश्ता लाया था—"

"हां, बेचारा पछतावे की आग में जल रहा है, तभी तो हम सबको यहां ला बसाया।"

"बापू की जमा-पूंजी? बांस-वन, पोखर?"

"स-ब! सब बेच-बाचकर, यहां..."

"यहां आकर, बापू ने जेनरेटर खरीद लिया। अब किराए पर चलाता है। यहां पैसा भी है—"

"जरूर नेक लोग हैं। हां, कल मैं डायमंड हार्बर जाऊंगी।"

"डायमंड हार्बर क्यों, दीदी?"

"वहां चन्ना दीदी का घर है। हम दोनों मिलकर कोई कारोबार करेंगी। कम-से-कम इतने रुपये तो हैं मेरे पास।"

"मां-बापू, सब..."

"ना, सुजन, अभी तो यही चाहते हो, लेकिन अगर मैं यहां रह गयी, तो कुछ ही दिनों में सैकड़ों तरह के ख्याल, मन बदल देंगे। लोग-बाग भी तुम लोगों पर किस्म-किस्म की बोली-आवाजें मारेंगे।"

"ना, ना, कोई कुच्छ नहीं कहेगा।"

"सब कहेंगे, सुजन। दोषी हो या निर्दोष, जेल की सजा काटकर, आने वाली औरत... वह भी खून के जुर्म में। यह कोई मामूली बात है?"

"लेकिन, तूने तो खून किया नहीं था, दिदिया।"

"जेल तो गयी? सजा तो काटी?"

"घर में मां-बापू, दीदी-जीजा, सुजन का बीवी-बच्चा।" दीदी ने कहा।

"अड़ोसी-पड़ोसी तो आने को नाच रहे हैं, लेकिन मैंने मना कर दिया। आज कोई न आये..."

"कत्ल किया हो या न किया हो, जो कलंक लग गया, वह तो जाने का नहीं, दिदिया।"

मां-बाप भी बड़े लाड़-प्यार से पेश आए "अभी टुक आराम कर ले, बिटिया, बाद में दिन-पल देखकर, तेरी शुद्धि करा लेंगे।"

"क्यों मां?"

"जेल-हाजत में रही, जात-कुजात के साथ...सो..."

"ठीक है, करा लेना, मगर कल जरा डायमंड हार्बर का एक चक्कर लगा आऊं..."

"वहां अब क्या है?"

"यहां अगर मैं रह गयी, मां, तो...वहां चन्ना दीदी का घर है। बाज़ार में सब्ज़ी-तरकारी-अंडे बेचती हैं। मैं भी वहीं... कुछ कर लूंगी। गुजारा हो जाएगा।"

बापू क्या कहते— "ना, रूपसी, तू कहीं मत जा?"

मां कहती— "आ, तू मेरी छाती में दुबकी रह?"

दीदी ने कहा, "ठीक ही कहा तूने, अगर यहां रही, तो सैकड़ों बातें उठेंगी, सैकड़ों झमेले..."

मां ने आंसू पोंछते हुए कहा, "अच्छा, अभी तो खा-पीकर, जरा सो जा..."

रूपसी का मन बार-बार उसे आगाह करता रहा। यह घर उसका अपना नहीं है। पंद्रह साल में सब कुछ बदल गया है।

रूपसी, डायमंड हार्बर जाने के लिए ही निकली थी। उसने सुजन को भी साथ नहीं लिया।

बापू ने उसे रोकर कहा, "मैं क्या इतना गया-गुजरा हूं कि तुझे खिला भी नहीं सकता था, उपासी?"

"खिला क्यों नहीं सकते थे? लेकिन, बापू, अगर मैं यहां रही न, तो..."

"फर्ज कर, चन्ना अगर तुझे वहां नहीं मिली?"

"मिलेगी! मिलेगी! फिक्र क्यों करते हो? अगर नहीं मिली, तो फिर एक बार यहीं लौटूंगी। मेरे यहां रहने से, तुम लोगों के लिए, सैकड़ों झमेले उठ खड़े होंगे। यहां दीदी है, सुजन है। उनके बच्चों के शादी ब्याह में आऊंगी। जश्न देखूंगी। वापस चली जाऊंगी।"

"तुझे सारा पता-ठिकाना मालूम है, री?"

सच बात तो यह थी कि रूपसी को एक भी ठिकाना सही-सही नहीं मालूम था। लेकिन, यह बात मां-बापू के सामने ज़ाहिर

नहीं की जा सकती थी। वेलफेयर दीदी ने एक रुक्के पर सारा अता-पता लिखकर, थमा दिया था। लेकिन वह जाए कैसे? संध्या चैटर्जी, विकल्प आश्रय, नारी कल्याण, हावड़ा, उंह! घूमते-भटकते पहुंच ही जाएगी। लेकिन, पहले, एक बार पति-श्री के दर्शन तो कर ले।

उसकी गाड़ी शाम को पहुंची। मकान खोजने में भी, कोई मुश्किल नहीं हुई। घर के दरवाज़े के एक कोने में, रूपसी छिपी बैठी रही। कुछ देर बाद, जतन लड़खड़ाते हुए, दरवाज़े तक आ पहुंचा। उसने दरवाज़े पर जड़े ताले में चाबी घुमायी, सांकल खोली। रूपसी बैठी रही।

काफी देर बाद, रूपसी कमरे में दाखिल हुई। जतन उसी चौकी पर सो रहा था, जिस पर कभी वह, अपने भले-बुरे सालों में, खुद सोया करती थी।

जेठानी के कमरे का दरवाज़ा खुला हुआ था। अंधेरा। सारा कुछ घुप्प अंधेरे में डूबा हुआ। सिर्फ़ एक ढिबरी टिमटिमा रही थी। जतन खूब चुस्त-तन्दुरुस्त, खाया-पीया, बलवान चेहरा। कमरे में लुंगी, बदन पर गंजी।

रूपसी ने पहंसुल उठा लिया और धीरे से जतन को धक्का दिया।

"सुनते हो? सुन रहे हो, मेरी बात!"

जतन ने सिर हिलाया।

"सुनो न!"

जतन ने आंखें खोलकर देखा।

"पहचानते हो मुझे?"

"तू...तू...तुम? तू?"

"हां, मैं! पहचाना?"

"तु...तु...यहां?"

"और कहां जाती?"

"तू... क्या यहां क्या करने..."

"हिसाब लेने आई हूं, जी?"

"क...क...कैसा हिसाब?"

"खुद बड़ी बहू को काटकर, टुकड़े-टुकड़े किए और नाम मेरा..."

"नहीं, नहीं नहीं, वो वक्त का चक्कर था..."

"नाम भी मेरा लगा, सजा भी मैंने काटी। निर्दोष होते हुए भी, जिस जुर्म में जेल की सजा काटी, यह अपराध अब कर ही डालूं। पिछले चौदह सालों से मैं सिर्फ़ और सिर्फ़ यही बात सोचती रही।"

"ना, ना, ना!" जतन ने हड़बड़ाकर, उठने की कोशिश की।

"ना-ना करने से भला कुछ आता-जाता है?"

रूपसी ने ढिबरी फूंककर बुझा डाली।

जतन मन्ना के रहस्यमय हत्याकांड के लिए, उसके करीबी रिश्तेदार-दुश्मन, निरापद मन्ना के ख़िलाफ़ पिछले बीस सालों से दीवानी मामला चल रहा था। आबगारी के दुकानदार से उसका झगड़ा, पंचायत सदस्य की बहन की इज़्ज़त लेने का गुनाह...ऐसे अनगिनत जुर्म के लिए उसे ज़िम्मेदार ठहराया गया।

जतन मन्ना वैनरिक्शे में सोये-सोये, प्रस्थान कर गया। गांव वालों ने कहा, पाप विदा हुआ। रूपसी मन्ना का नाम, किसी के ख्याल में भी नहीं आया। हां, शाम ढले, एक औरत घर में दाख़िल ज़रूर हुई थी, लेकिन ऐसे हर दिन ही नई-नई औरत आती जाती थी।

डायमंड हार्बर में पोई, सहजन, आलू-मूली बेचते-बेचते, रूपसी को भी खबर मिली, वह विधवा हो गयी है। सुजन ही खबर देने आया था।

रूपसी ने उसे झिड़कते हुए कहा, "देख, सुजन, बाजार-हाट का टैम है। धंधा खोटी मत कर। सधवा मैं थी कब, जो विधवा हो गयी?"

सुजन चुपचाप वहां से चल पड़ा...

महाश्वेता देवी *हिन्दी व बंगला साहित्य जगत की मशहूर लेखिका हैं।*

(मूल बंगला से अनुवादः सुशील गुप्ता)